International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2025; 7(12): 01-04
Received: 12-10-2025
Accepted: 15-11-2025

डॉ0 अनुराग मिश्रा
शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, का0सु0 साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

अविनाश पाण्डेय
शोध छात्र, हिन्दी, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 अनुराग मिश्रा
शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, का0सु0 साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

तुलसीदास के काव्य में सामाजिक विवेचना

अनुराग मिश्रा, अविनाश पाण्डेय

DOI: https://www.doi.org/10.22271/multi.2025.v7.i12a.860

सारांश
गोस्वामी जी के काव्य की विवेचना के प्रसंग में तथा भक्त कवियों के बीच उनकी विशिष्टता के संदर्भ में आचार्य शुक्ल का सूत्र वाक्य है कि प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव, जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार, हिंदी के सभी कवियों में उनकी सर्वांगपूर्ण भावुकता, मानव प्रकृति के अधिकाधिक रूपों के साथ उनके हृदय का रामात्मक सामंजस्य। काव्य–सृजन के इन विशिष्ट उपादानों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा था–''यदि कहीं सौंदर्य है तो प्रफुल्लता, शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्ष पुलक, गुण है तो आदर, पाप है तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न, शोक है तो करुणा, आनन्दोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो दीनता, तुलसीदास के हृदय में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान है।''
रामकथा में अंतर्भूत विराट जीवन का वैविध्य तथा मुगल शासन के अंतर्गत दुर्दशाग्रस्त वैषम्यपूर्ण जनजीवन–वे दोनों परस्पर घुलमिल गए हैं। उपर्युक्त दोनों पहलुओं की परस्पर घुलनशीलता से तुलसी का काव्य इतना मार्मिक और भाव–व्यंजक हो गया है कि उत्तरी भारत के हिंदी भाषी अपढ़ जनगण तक सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, द्वेष–ईर्ष्या के क्षणों में तुलसी के वाक्यों को स्वयंसिद्ध लोकोक्ति के रूप में उद्धृत कर देते हैं, कभी संत और असंत, सज्जन और दुर्जन का फर्क समझाते हुए, कभी खलों का स्वभाव बतलाते हुए, कभी अन्याय और अत्याचार का हवाला देते हुए, कभी नीति और अनीति, सदाचार और दुराचार की व्याख्या करते हुए। इसीलिए कहा जाता है कि तुलसी लोकप्रिय हैं, लोकहृदय के मर्मज्ञ हैं। कुछ लोग धर्म और भक्ति के लिए भी उन्हें याद करते हैं। हिंदू गृहस्थ परिवारों में रामचरितमानस के नियमित पाठ का भी चलन अभी समाप्त नहीं हुआ है। लेकिन तुलसी धर्म और भक्ति के मार्ग के पथ–प्रदर्शक के नाते बीसवीं सदी के श्रोताओं–पाठकों के लिए उतने प्रासंगिक नहीं है, जितने नैतिक लोकानुभव के सूक्तिकोश के रूप में। जब तक यह उत्पीड़नकारी वैषम्यपूर्ण समाज व्यवस्था है तब तक तुलसी काव्य की वैविध्यपूर्ण व्यंजना की शक्ति क्षीण नहीं पड़ेगी। इस व्यंजना में भक्ति, धर्म, नैतिकता, मानवीय मूय, संयक्त परिवार की आचार संहिता, न्याय– अन्याय बोध सब कुछ समाहित रहता है। जीवन के विराट दृश्य–फलक पर तुलसी की दृष्टि की चर्चा अपूर्ण प्रतीत होगी। यदि कलियुग और राम राज्य के वर्णन को ध्यान से न पढ़ें, यदि आप दीन–दुःखी और दरिद्र जनसाधारण के प्रवक्ता और परामर्शदाता के रूप में गोस्वामी जी के विनय संबंधी पदों और गीतों की संवेदनशीलता में अंतर्निहित गहरी व्यंजना को न समझें। ''वैराग्य संदीपनी'' से ''हनुमान बाहुक'' तक एक रचयिता के रूप में तुलसी में हो रहे निरंतर परिवर्तनों पर ध्यान देना आवश्यक है, वर्ना उनकी कविताओं के बदलते हुए बहु–अर्थ और उनकी रंगारंग बहु–छवि को आत्मसात नहीं कर पायेंगे। वीतराग और वैष्णव हो जाने के बावजूद युग के यथार्थ पर उनकी दृष्टि थी, अतः उनके विचार–संस्कार बाहर की दुनियां से टकरा रहे थे।
तुलसी के रचना संसार के तीनों चरण बाह्य विश्व से अनुकूलित है। इसीलिए यह माना जाता है कि अपने युग और समाज के मुखर प्रवक्ता और प्रतिबिम्ब के रूप में भक्त कवियों के बीच तुलसी अद्वितीय हैं। उनके संपूर्ण काव्य कृतित्व में मानवतावादी नैतिकता (''परहित जैसा कोई पुण्य नहीं तथा परपीड़ा जैसा कोई पाप नहीं'') अंतःसलिला के रूप में प्रवाहमान है। रचयिता की यह नैतिकता उनके काव्य विवेक के रूप में सर्वत्र विद्यमान है।

कुटशब्दः तुलसी का काव्य कला, भाषा, छंद और संगीत, काव्य का रूप विधान, रामचरित मानस का रूप विधान।

प्रस्तावना
गोस्वामी जी के सृजनात्मक विकास के क्रम में ''वैराग्य संदीपनी'' के शांतिपद प्राप्त संत के रूप में आत्म–साक्षात्कार प्रस्थान बिंदु है, प्रौढ़ विकास का दूसरा पड़ाव राम–भक्ति में गहरी अनुरक्ति के फलस्वरूप ''रामचरितमानस'' है और तीसरा चरण है आत्मनिवेदन की व्याकुलता जिसकी परिणति 'विनय पत्रिका', ''कवितावली'' और ''हनुमान बाहुक'' में होती है। पहले चरण में तुलसी बाह्य विश्व से अंतक्रिया का समारम्भ करते हैं। दूसरे चरण में वैष्णव आध्यात्मिकता और राम–भक्ति के माध्यम से अपने युग के पीड़ितों के एक नायक का अन्वेषण करते हैं जो लौकिक–अलौकिक दोनां हो, तीसरे चरण में पीड़ामय संसार के परिवेश में आत्मिक छटपटाहट और मोहभंग को पूरी तरह व्यक्त

न कर पाने की अंतर्वेदना है। उनके उदृष्टिफलक के अंतर्गत प्रकृति, संपूर्ण देश, सृष्टि निर्माण का रहस्य, देव मंडल, भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, ज्योतिष, तत्कालीन समाज की अवस्था अर्थात् अकाल, दरिद्रता, शोषण, कपट, अत्याचार, कृषक जीवन, तत्कालीन निरंकुश सामंती व्यवस्था, राजा प्रजा संबंधों की वास्तविकता और आदर्श राज्य का स्वरूप, खेत–खलिहान, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, नदी–नो, पर्वत, वन्य जीवन, कोल–किरात–भील, नैतिक मूल्य, पाप–पुण्य बोध, वर्णाश्रम व्यवस्था, ब्राह्मण समाज, सज्जन–दुर्जन, छलकपट आदि न जाने कितनी चीजें उनके काव्य में समायी हुई हैं। राम कथा के विभिन्न पात्रों के चारित्रिक वैविध्य के अंकन द्वारा अपने दृष्टि क्षेत्र की व्यापकता और अपने ज्ञान प्रसार का तुलसी ने परिचय दिया है। सादृश्य विधान और प्रतीक चयन भी सर्वांगीण जीवन दृष्टि के परिचायक है। इसी के अंतर्गत अन्योक्तियाँ भी आती हैं। डॉ0 रमेश शुक्ल मेघ ने तुलसी पर लिखित अपनी पुस्तकों में इनका व्यवस्थित अध्ययन किया है। जैसे कौओं को बड़े प्रेम से पालों पर क्या वे कभी मांस भक्षण छोड़ सकते हैं? मानसरोवर के जल में पली हुई हंसिनी कहीं सारे समुद्र मे जी सकती है? कहीं पोखरे का क्षुद्र कछुआ भी मंदराचल उठा सकता है ? संसार में जितने भी कामी और लोभी होते हैं वे कुटिल कौवे की तरह सबसे डरते हैं। राजा तड़पने लगे मानो मछली को मॉजा व्याप गया हो। राजा के वचनों को कैकेयी टेढ़ा करके जान रही है जैसे ''चलइ जोंक जल वक्र गति, जदपि सलिल समान।'' नगर के लोग ऐसे व्याकुल हैं जैसे शहद छीन लिए जाने पर मधुमक्खियाँ। ऐसे न जाने कितने आंतरिक वर्णन है जो मूलतः रचनाकार के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और व्यापक दृष्टिफलक का परिचय देते हैं।

तुलसी का काव्य कला एवं भाषा

तुलसी की सृजनशील काव्य कला की महानता को समझने के लिए सबसे पहले इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित करने की जरूरत है कि उन्होंने संस्कृति और फारसी की दरबारी काव्य परंपरा और लक्षण ग्रंथों को तिलांजलि देकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के अभ्युदयकाल की नवीन जातीयता के उन्नयन को ऐतिहासिक कार्यभार के रूप में स्वीकार किया। दरबारी रचनाकारों और अपने युग के पंडितों की पतनशील सांस्कृतिक धारा का अनुसरण न कर तुलसी अन्य भक्तिकालीन कवियों की तरह भाषा काव्य को समृद्ध करने का निर्णय करते हैं। अपने युग के जनसाधारण की सांस्कृतिक आकांक्षा और सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति के दायित्व को एक चुनौती की तरह लेकर वे खुल्लम–खुल्ला नई धारा के सहयात्री बन गए। इस प्रश्न पर निर्णय में उनकी युक्ति भी गौर करने लायक हैं।

का भाषा, का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आयै कामरी, का लै करै कुमाँच।।

सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम नितप्रति व्यवहार की टकसाल में ढ़ली हुई जनभाषा ही हो सकती है–ठीक वैसे ही जैसे शीतकाल में कंबल ही काम आता है, रेशमी वस्त्र नहीं। ''भाखा बहता नीर'' जैसे उक्ति के द्वारा कबीर ने संस्कृत के विरूद्ध जो तर्क दिया था, तुलसी उसी तर्क के आधार पर अपना भी निर्णय बतलाते हैं। भक्तिकालीन अन्य कवियों की तरह गोस्वामी जी को भी पंडितों के द्वारा किये जा रहे उपहास और व्यंग्य की चिंता नहीं थी।

मध्यकालीन सामंती समाज के सांस्कृतिक रूढ़िवाद और पतनशील मूल्य व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष का जो व्यापक आंदोलन मराठी, बंगला, उड़िया, असमिया समेत सभी जनभाषाओं में चल रहा था, तुलसीदास उसी आंदोलन के एक अंग थे। डॉ0 राम विलास शर्मा मानते हैं कि इस आंदोलन ने सामंती बंधनों की जकड़बंदी के बरक्स भक्त कवियों के लिए ''व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति'' का द्वार उन्मुक्त कर दिया।

''सामंतवाद ने मनुष्य के व्यक्तित्व को अनेक बंधनों में जकड़कर उसके विकास को रोक दिया था। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, सामाजिक आचार–विचार की श्रृंखलाओं में बंधकर मनुष्य का यह व्यक्तित्व स्वाधीन विकास के लिए तड़प उठता था। बिना इस व्यक्तित्व को स्वच्छंदता दिए हुए बिना मुक्त आकाश में उड़ान भरे हुए काव्य में गेयता उत्पन्न नहीं हो सकती। ब्रजभाषा काव्य में जो अभूतपूर्व गेयता उत्पन्न हुई है, उसका सबसे बड़ा कारण इसी व्यक्तित्व की सापेक्ष मुक्ति है। सापेक्ष मुक्ति इसलिए कि सामाजिक बंधनों से यह पूर्ण मुक्त नहीं थी।''

डॉ0 रामविलास शर्मा का यह उद्धरण ''मध्यकालीन हिंदी कविता में गेयता'' शीर्षक जिस निबंध में लिया गया है, उसी में आगे चलकर तुलसी काव्य की गेयता–चाहे वह अवधी में लिखता हो या ब्रजभाषा में का उपयुक्त विवेचन किया गया है। इस दृष्टि से हिंदी भाषी जनता द्वारा रामचरितमानस का गाया जाना एक प्रबंध काव्य में गेयता के गुण उपलब्ध करना निश्चित रूप से तुलसी की महान उपलब्धि है। भाषा में लिखने के निर्णय में तुलसी को लोक–सस्कृति और जनसाधारण की दैनंदिन जीवनधारा में कलात्मक साधनों की अक्षय निधि प्राप्त हो गई। भारत के विभिन्न जनपदों में प्रचलित लोक संस्कृति के विभिन्न रूपों, संस्कार गीतों, पर्व–त्योहार और विभिन्न ऋतुओं के लोक गीतों से गोस्वामी जी को वे छंद प्राप्त हुए जो अपभ्रंश काव्यों में भी व्यवहृत होकर निखर चुके थे। उपमान, रूपक, प्रतीक, बिम्ब, मुहावरे, लोकोक्ति तथा दृष्टान्त भी इसी लोक–संस्कृति और ठेठ ग्रामीण जीवन से लिए गए हैं।

शब्द–चयन पर भी तुलसी की दृष्टि सांस्कृतिक संकीर्णतावाद से मुक्त थी। इस प्रसंग में प्रोफेसर लल्लन राय ने बताया है– ''भाषा के संबंध में तुलसी की एक अन्य विशेष्ज्ञता है, मुक्त रूप से दूसरी बोलियों और भाषाओं से शब्द ग्रहण। इसमें ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी तथा कुछ नितान्त स्थानीय शब्दों के साथ अरबी और फारसी भाषा के शब्द भी आ जाते हैं। तुलसी ने अपनी रचनाओं में इतने अधिक अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है, जितना शायद हिंदी के किसी भी पुराने या आधुनिक कवि ने नहीं किया।''

डॉ0 त्रिपाठी उल्लिखित ध्वनिमैत्री के लिए अपनाए गए कौशलों का सोदाहरण विवेचन करते हैं। इन कौशलों के अंतर्गत ही ह्रस्व स्वरान्त पद प्रयोग और वर्णानुप्रास की छटा तुलसी की उल्लेखनीय विशेषता है। अनुप्रासों में खास तौर पर आनुनासिक ध्वनियों के आरोह–अवरोह गौर करने लायक है। उदाहरण के लिए ''नील सरोरूह स्याम तरून अरून बारिज नयन'' अथवा ''किकिणि नूपुर धुनि सुनि'' ''तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखजन चातक से'' अथवा ''उदित उदयगिर मंच पर रघुबर बाल पतंग'' आदि से संबंधित पदों के ध्वनि सौंदर्य और तदनुसारी भाव सौंदर्य को देखा जा सकता है।

छंद और संगीत

रामचरितमानस के संस्कृत श्लोकों को छोड़कर शेष संपूर्ण महाकाव्य में दोहा–चौपाई और सोरठा में ही रचना की गई है, यद्यपि भावधारा और प्रसंग के अनुसार लय–गति–ताल का अनुसरण करते हुए हरिगीतिका, तोमर, अरिल्ल, त्रिभगी आदि छंदों के उपयोग के अनुक उदाहरण मिलते हैं। कार्य या घटना की पूर्णता पर कथाविन्यास में कड़ियाँ मिलाने के लिए मंथर गति से चलने वाले छंद के प्रयोगों में नई उद्भावनाओं के प्रमाण भी मिलते हैं। चरित काव्यों की परंपरा में परखी जा चुकी कड़वक योजना का प्रभाव रामचरितमानस पर पर्याप्त रूप में परिलक्षित होता है। चरितकाव्यों पर शोध करने वाले डॉ0 दीनानाथ शुक्ल की टिप्पणी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है–''मानस में भी हमें

संस्कृत काव्यों की सर्गनिबद्धता का नहीं प्रत्युत् कड़वक योजना का ही प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है। इन कड़वकों में उपलब्ध होने वाली अर्द्धालियों की संख्या के लिए कोई निश्चित नियम न तो अपभ्रंश के महाकाव्यों में ही पाया जाता है और न रामचरितमानस में ही। ''पउमचरिउ'' की बारहवीं संधि में ही हमें कहीं आठ अद्धालियों का कड़वक दिखाई देता है, तो कहीं नौ का। मानस में भी आठ अर्द्धालियों से लेकर सोलह तक के कड़वक देखने को मिलते हैं।

गोस्वामी जी की अन्य प्रमुख कृतियों में ''कवितावली'' और ''हनुमान बाहुक'' के प्रिय छंद कवित्त और सवैया है। ''रामाज्ञा प्रश्न'' और ''दोहावली'' में दोहा छंद, ''पार्वती मंगल'' और ''जानकी मंगल'' में मगल, सोहर और हरिगीतिका छंद का उपयोग दिखाई देता है। ''विनय पत्रिका'' ''गीतावली'' और ''कृष्ण गीतावली'' में प्रगीत और मुक्तक के रचनातंत्र का प्रयोग है। पद शैली में रचित ये प्रगीत और मुक्तक कल्याण, गौरी, असावरी, भैरवी, केदारी घनाश्री, मल्हार, रामकली, टोड़ी, मारु, विलावल आदि राग–रागनियों में निबद्ध है। स्वामी हरिदास की संगीत परंपरा से रस–सिक्त गायन शैली का लाभ उठाते हुए और ब्रजभाषा की मँजी हुई प्रगीतात्मकता का निखार प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास ने संगीत के प्रति भी अपनी गहरी अभिरूचि और रागमयता का परिचय दिया है।

तुलसी की सभी कृतियों में कथागायन का लाकरूप, डॉ0 रमेश कुंतल मेघ के विश्लेषण के अनुसार चित्रकूट के परिवेश से ही आया है। उनके अनुसार ''चूँकि चित्रकूट राम की उपासना में वृंदावन की तरह है, अतः कीर्तिनियों की भिन्न–भिन्न मंडलियों द्वारा राम के भजन और राम के लीलागान की परंपरा आज तक चली आ रही है। कहना न होगा कि गोस्वामी जी के जीवन के इस वृत्त में चित्रकूट के संपर्क ने तुलसी के सृजनकार्य तथा कवित्स को गढ़ा है।''

काव्य का रूप विधान

तुलसी ने मध्यकाल में प्रचलित काव्य सृष्टि के तीनों रूप विधानों–प्रबंध, मुक्तक और प्रगीत को अपनाया। कथा वर्णन की परिपाटी में अपना काव्य लेखन आरंभ करने के पहले गोस्वामी जी फुटकर मुक्तक और पदावली में उपलब्ध संत काव्य की परंपरा की ओर आकृष्ट हुए थे। रत्नावली से दुत्कारे जाने के बाद जब उन्हें लौकिक–पारिवारिक गृहस्थ जीवन से विरक्ति हुई तो संतों की वैराग्य प्रधान रचनाओं में ही उन्हें आत्माभिव्यक्ति दिखाई पड़ी। ऐसा माना जाता है कि वैराग्य संदीपनी के पद निर्गुण–निराकार ब्रह्म की उपासना, जीवन की क्षण–भंगुरता और इंद्रियार्थ निषेध से भरे पड़े हैं। यह मात्र संयोग नहीं है कि तुलसीदास पश्चिमी ब्रजभाषा में अपनी रचना आरंभ करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद लिया जा सकता है, ''वैराग्य संदीपनी'' से उद्धृत तीसरा पद माना जाता है।

सुनत लखत श्रुति बिनु रसना बिनु रस लेत।
बास नासिक बिनु लहै परसै बिना निकेत।।

अपनी इस प्रारंभिक रचना में भी वे हरिकथा और रामकथा के अंतर्गत ही इन पदों की रचना कर रहे थे। ''वैराग्य संदीपनी'' के पद 38 और 40 में आयी निम्नांकित उक्तियॉ ध्यान देने लायक है –

तुलसी भगत सुपच भौ भजै रैन दिन राम।
ऊंचो कुल केहि काम को जहां न हरि को नाम।।
जदपि साधु सब ही विधि हीना। तदपि समता के न कुलीना।

सुपच और कुलीन में तथा साधु और कुलीन चांडाल और साधु को ऊंचा स्थान देते हैं। तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ पंडित राम नरेश त्रिपाठी की दृष्टि में ''तुलसीदास की सबसे पहली रचना ''वैराग्य संदीपनी'' जान पड़ती है। यह उस समय की रचना है जब तुलसीदास का झुकाव संतमत की तरफ रहा होगा। संतमत का प्रचार उन दिनों जोरों पर था।

''रामचरितमानस'' के रूप विधान, प्रबंधत्व और महाकाव्यत्व पर चर्चा इस टिप्पणी के अंत में की गयी है। इस बीच यह देख्ना आवश्यक है कि मानस के बाद लिखित रचनाओं में ''पार्वती मंगल'' का रूप विधान क्या है? प्रबंध काव्य के लिए अपेक्षित वर्णनात्मकता की काव्य प्रतिभा का अब पूर्ण प्रस्फुटन हो चुका है। अतः ''रामचरितमानस'' में वर्णित शिव–पार्वती विवाह के घटना–सयोजनों में गोस्वामीजीएकभिन्नता लाते हैं। जाहिर है कि मानस में यह आख्यान शिवपुराण पर आधारित है, जबकि पार्वती मंगल में कालिदास के ''कुमारसंभव'' में उपलब्ध कथा–विन्यास का उपयोग किया गया है। मानस में तो जब राम बीच में पड़ते हें, तभी पार्वती से विवाह के लिए शिव राजी होते हैं, जबकि पार्वती मंगल में राम बीच में नहीं पड़ते। पार्वती की तपस्या से शिव स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं और बटु रूप में जाकर पार्वती की परीक्षा लेते हैं। मानस में सप्तर्षि और पार्वती के बीच संवाद की योजना करायी गयी है, जबकि पार्वती मंगल में बटु और पार्वती के बीच सोहर और अरिगीतिका छंदों में इसकी रचना की गई है। उल्लेखनीय कृतियों में अब ''गीतावली'' और ''विनय पत्रिका'' पर विचार करना आवश्यक है। ये दोनों ही कृतियॉ आत्मनिवेदन से लबालब गेय पद हैं। इनका रचनातंत्र भक्तिकाल के प्रारंभिक दौर की रचनाशीलता से अनुशासित है और तत्कालीन उत्तरी भारत के जनपदों में प्रचलित लोकसंगीत की टकसाल में ढल कर इसका पदविन्यास निखर उठा है।

रामचरितमानस का रूप विधान

''रामचरितमानस'' अपनी प्रबंधात्मक और आख्यान के रूप विधान की दृष्टि से महाकाव्य के रूप में लगभग सर्वस्वीकृत है, यद्यपि अनेक विद्वानों ने इसे पुराण काव्य भी कहा है। तुलसी ने इस रचना का रूपबंध ऐसा बनाया है कि हिंदी भाषी क्षेत्र के प्रायः सभी जनपदों में यह गाया जाता है और गाकर सुनाया जाता है। इस महाकाव्य के श्रोता और इसके आधार पर होने वाली रामलीलाओं के दर्शक श्रद्धा के विवश होकर पौराणिक कथा में प्रयुक्त चमत्कारों के प्रति अपने अविश्वास को स्थगित कर देते हैं, चूंकि तुलस ने अपने नायक में ही अलौकिकता और सर्वशक्तिमानता की प्रतिष्ठा कर दी है। गोस्वामी जी के इस चरितनायक का लौकिक–सामाजिक जीवन प्रसंग इतना विराट है कि ताड़का, वाल्मीकि, अहिल्या, केवट, निषाद, जटायु, सम्पती, सुमंत्र आदि सब के सब कथानक के फलक पर सर्वशक्तिमान और अलौकिक के सहज मानवीय व्यापार में शामिल हो जाते हैं। वस्तुतः ये सभी किसी न किसी प्रासंगिक कथान के अनिवार्य अंग है।

अधिरिक और प्रासंगिक कथानकों के बीच आख्यान और इतिवृत्त जैसा संबंध है। इस संबंध को दिखाने के लिए अनेक स्थलों पर काल भी एक ही रखा गया है। कथानों के बीच संबंधों से घटनाओं में जो जोड़ आता है अर्थात् आकस्मिकता आती है उसे दैव विधान और प्रारब्ध की तार्किकता से विश्वसनीय तथा कुतूहलवर्द्धक बनाया गया है। चित्रपटल के ऐसे आकस्मिक परिवर्तनों के लिए प्रारीा से अंत तक जिन युक्तियों का आश्रय लिखा गया है उनमें शंका और समाधान की प्रश्नोत्तर शैली, अवतारी महापुरुष का अतिप्राकृतिक दिव्य शक्ति का प्रदर्शन तथा कुछ पात्रों के पूर्वजन्म की कथा का वाचन आदि कौशल द्रष्टव्य है। बालकांड में बतौर पृष्ठभूमि शिवचरित, नारद शाप, मनु–शतरूपा, प्रतापभानु–कपटी मुनि, जलंधर वृन्दा, रावण चरित आदि प्रासंगिक कथा इकाईयों के नियोजन में पुराणों की आख्यान शैली

का अनुसरण है। इसी रह रामचरितमानस के अन्य सर्गों में सम्पति, किनी, राक्षसी, कावभुशुंडी आदि के निजी आत्मवृत्त भी मिथकीय कोटि के ही हैं। गोस्वामी जी ने कथाविन्यास की इस संरचना के लिए पुराणों के अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, कुमारसंभव तथा पउमचरिउ जैसी चरितकाव्य परंपरा में लिखित रामायणों के प्रबंध कौशल को फेरबदल कर दोहराया है। डॉ0 रमेश कुंतल मेघ मानते हैं कि ''इनमें निःसंदेह प्रबंध सौष्ठव विफल हुआ है।''

मानस के सात सोपानों तथा चार घाटों की व्याख्या से तुलसी साहित्य संबंधी समालोचना और शोधकृतियाँ भरी पड़ी हैं। मानस को धर्मग्रंथ या भक्ति सरोवर के रूप में प्रस्तुत करने वाले विद्वानों ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। ''मानस में रामकथा'' नामक अपनी समालोचनात्मक कृति के माध्यम से पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र ने भी इस प्रकार की विवेचन पद्धति को गंभीर ज्ञानचर्चा का रूप दे दिया। विद्वानों के बीच इस प्रसंग को लेकर इतनी प्रतिद्वद्विता बढी कि डॉ0 उदयभानु सिंह मानस के सोपान की व्याख्या और कथा संरचना के प्रश्नों के बीच घालमेल करते हैं। उनके अनुसार ये सात सोपान के आरंभ से भक्तिरस मिलने लगता है। पाठक ज्यों–ज्यों गहराई में उतरता जाता है त्यों–त्यों भक्तिजल में प्रवेश करता जाता है और सातवें सोपान पर पहुंचकर वह भक्तिरस में पूर्णतः मग्न हो जाता है।

तथ्य की दृष्टि से यह सर्वविदित है कि अध्यात्म रामायण, काकभुशुंडि रामायण आदि से तुलसी ने शिव पार्वती और काक गरूड़ संवाद की पद्धति अपनायी है। पर इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण उस कलात्मक आवश्यकता का विवेचन हमारे विद्वान समालोचकगण भूल गए जिसके निर्णयक दबाव में उनकी संपूर्ण रचनाशीलता अनुशासित अनुकूलित हो रही थी। तत्कालीन जनसमाज और सहृदय समुदाय की ऐतिहासिक पुनर्रचना का यदि हम सोंचे तो पता चलेगा कि गोस्वामी जी साक्षर समुदाय के लिए किसी साहित्यिक पाठ की रचना न कर, निरक्षर जनसाधारण को गाकर सुनायी जाने वाली कथाकृति या कथाप्रबंध की रचना कर रहे थे। रामचरितमानस की हस्तलिखित पोथियों से रामकथा काव्य का थोड़ा–बहुत प्रसार सिर्फ शिक्षित–कुलीन समाज मेंहो रहा होगा। पर एक कृतिकार के नाते गोस्वामी जी अपने कथाप्रबंध, गाथा या गाहा का पाठ कथा प्रवचन, लोक गायन और लीला गान सुनने वाले हृदय श्रोता समाज के लिए तैयार कर रहे थे। नाटक–नृत्य–संगीत की समवेत विधा के रूप में अगर रामलीला तुलसी स पहले किसी भी रूप में अयोध्या और चित्रकूट में रही होगी तो तुलसी की रचनाशीलता पर जिस प्रकार की छाप पड़ी होगी, उसकी कल्पना की जा सकती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि तुलसी एक बड़े कवि हैं। उनके विचारों से असहमत हुआ जा सकता है, परंतु उन्होंने अपनी कविता में जीवन के प्रसंगों का मार्मिक, सूक्ष्म और जीवन्त चित्रण किया है। जनभाषा अवधी को काव्य–भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उन्होंने जीवन के कई पक्षों का इतना हृदयस्पर्शी चित्रण किया है कि पाठक भाव–विभोर हो जाते हैं। रामचरितमानस के एक–एक प्रसंग को पढ़कर पाठक सुध–बुध खो बैठते हैं। हाँ, जहां–जहां ब्रह्म और दर्शन का उल्लेख होता है वहां–वहां कथा रस अवश्य बाधित होता है। कुल मिलाकर रामचरितमानस एक अद्वितीय महाकाव्यात्मक कृति है।

''रामचरितमानस'' इस दृष्टि से गोस्वामी जी की प्रतिनिधि रचना है। हिंदी भाषी जनता को यह जातीय महाकाव्य जनजन का कंठहार क्यों बना हुआ है? इसके काव्यरूप और प्रबंधत्व की कलात्मक विशेषताएं क्या है? इन प्रश्नों पर काव्यशास्त्रीय मानदंडों के अनुसार विद्वान आलोचकों ने हुत विस्तार से विचार किया है और सभी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि लोकख्यात वृत्त, सर्गबद्ध कथा, धीरोदात्त नायक की प्रतिष्ठा, विराट जीवन संदर्भ, लोकमंगल के आदर्श, अन्याय पर न्याय की विजय, रस व्यंजना में वैविध्य, सहज–सुगम भाषा शैली, कथा विन्यास में आधिकारित कथा के साथ प्रासंगिक–पताका–प्रकरी कथाओं के कलात्मक संग्रथन, मार्मिक स्थालों की पहचान, विभावन व्यापार में दृश्यात्मकता, प्रभावोत्पादक सादृश्य योना, अलंकार विधान में अनुभवगम्य विस्तार, नैतिक आदर्शो के संदेह आदि के सफल कलात्मक संयोजन के कारण रामचरितमानस एक अद्वितीय महाकाव्यात्मक कृति है।

संदर्भ

1. गोस्वामी तुलसीदासः रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्यः मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. मीरा का काव्यः विश्वनाथ त्रिपाठी, दी मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
4. लोकवादी तुलसीदासः विश्वनाथ त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
5. सूरदासः रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी, वाराणसी।
6. त्रिवेणीः रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।